प्रवचन–2 वचनामृत–21 से 25

यह वचनामृत, 21 वाँ बोल है, 20 (बोल) तो चले। विचार करने में थोड़ा अवकाश हो, उसको समझने के लिये यह बात है, बापू! आहा...! अभी तो जिसे लौकिक नीति का ठिकाना न हो, उसे तो यह बात सुनने भी मिले नहीं। सुनने मिले तो उसे रुचे भी नहीं। लौकिक नीति (अर्थात्) जिसे दारू, माँस और परस्त्री का त्याग, इस अनैतिक का त्याग तो पहले होता है। दारू–शराब, माँस, परस्त्री–इसका त्याग तो (यदि) पहले से न हो तो वह नरकगामी जीव है। उसके लिये यह बात नहीं। आहा...हा...!

जिसे **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना...** है शब्द? क्या कहते हैं? यह चैतन्य आनन्दस्वरूप भगवान, (ऐसे) चेतन को चैतन्य में से परिणमित (अर्थात्) अन्तर में से हुई दशा। जिसको संसार के पाप के परिणाम तो मानो न हो, परन्तु पुण्य के परिणाम (की) भी जिसको अन्दर में रुचि न हो। जिसके पाप के परिणाम तीव्र हैं, उसको यह सुनना भी अन्तर (में) रुचेगा नहीं। ऐसी चीज़ है भगवान!

मुमुक्षु–हमें छूटने के लिये कोई रास्ता तो चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री–यह रास्ता छूटने का (है)। वही कहते हैं न भगवान! **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित भावना...** यह छूटने का रास्ता। पहले शब्द में बहिन की वाणी। अनुभव की वाणी है।

असंख्य अरब वर्षों का जातिस्मरणज्ञान है। जातिस्मरण अर्थात् यह जाति पहला भव... पहला भव... पहला भव... पहला भव... ऐसे नौ भव, उनका बहिन को प्रत्यक्ष ज्ञान है। इसके असंख्य अरब वर्ष होते हैं। क्योंकि सुधर्म स्वर्ग में गये थे। उसमें उन्हें जैसे कल की बात याद आयें, वैसे असंख्य अरब (वर्षों) की बातें याद आयी हैं। उन बातों के आने से पहले अन्दर से उन्हें ऐसा उगा कि लौकिक नीति का जिसका ठिकाना नहीं हो, उसको तो चैतन्य की बात किसी भी तरह बैठेगी नहीं। समझ में आया?

जिसको दारू, माँस, मछली, और परस्त्री का त्याग नहीं है, उसके तो नैतिक जीवन का भी ठिकाना नहीं है। आहा...हा...! यहाँ तो लोकोत्तर नीति की बात चलती है। वह लौकिक नीति है, ऐसा तो साधारण सज्जन जीव की भी ऐसी स्थिति नहीं होती। दारू, माँस, मछली, परस्त्री–ये सब तो साधारण लौकिक नैतिक जीवन में भी ऐसी बात नहीं हो सकती। आहा...! यहाँ तो तदुपरान्त जिसको आत्मकल्याण करना हो (इसकी बात है)। उसमें तो (अनैतिकता में तो) नरक और निगोद में भव हैं।

जिसको **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित...** यह क्या कहा? चैतन्यस्वरूप जो पुण्य और पाप के विकल्प से रहित है, ऐसे चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित (अर्थात्) उसमें से प्रगट हुई दशा। आहा...हा...! थोड़ी सूक्ष्म बात है प्रभु! (परन्तु) बात तो ऐसी है। यह कोई नयी नहीं है। अनादि से यह बात... जैन परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ कर रहे हैं। यह बात कोई नयी है नहीं। इसे समझने में नयी लगे परन्तु परमात्मा की वाणी–जिनेश्वर त्रिलोकनाथ–इनकी दिव्यध्वनि महाविदेह में तो अनादि से चलती है। यहाँ तीर्थंकर का विरह पड़ता है (भरतक्षेत्र और ऐरावत में), महाविदेह में कभी भी तीर्थंकर का विरह नहीं होता। आहा...हा...! वहाँ भी अनन्त बार जन्म लिया और समवसरण में भी गया, परन्तु अन्तर में, अन्दर आत्मा में चोट नहीं लगी। आहा...हा...! यह बाहर के प्रेम की रुचि में पड़कर वहीं का वहीं भटकता रहा! आ...हा...हा...हा...!

यहाँ कहते हैं, (यह) थोड़ी सूक्ष्म बात है। बहिन थोड़ा बोल बोले। वहाँ लड़कियाँ बैठी होगी। बहिन के आश्रय में 64 बाल ब्रह्मचारी लड़कियाँ हैं। बाल ब्रह्मचारी, हों...! कई लाखोंपतियों की लड़कियाँ और अंग्रेजी पढ़ाई, ये तुम्हारी पढ़ाई को क्या कहते हैं? (ग्रेज्युएट) ग्रेज्युएट लो! भाषा तुम्हारी भूल जाते हैं। यह धर्म की भाषा आने पर यह लौकिक भाषा भूल जाते हैं। ऐसी ग्रेज्युएट... ग्रेज्युएट... हुई लड़कियाँ हैं! उनके बीच ये बोले थे, उन लोगों ने थोड़ा लिख लिया, सो प्रसिद्धि में आया। वरना तो (प्रसिद्धि) में आता ही नहीं। वे तो बाहर से मर गये हैं। (चलते हुए देखे तो जैसे) मुर्दा चलता हो! अन्तर अतीन्द्रिय आनन्द इतना उमड़ पड़ा है कि जिसके रस के आगे कौन सामने देखता है और कौन नमस्कार करता है, इसकी कोई दरकार नहीं! उसमें रात्रि–(चर्चा) में ये वचन निकल गये हैं!

प्रभु! चैतन्य को (अर्थात्) इस आत्मा को चैतन्य में से (अर्थात्) आत्मा में से परिणमित (भावना), **परिणमित** ऐसा क्यों कहा? क्योंकि मात्र कल्पना–जानकारीरूप धारणा कर रखी हो, ऐसा नहीं, परन्तु अन्दर में उसका परिणमन हुआ है। आत्मा ज्ञानानन्द है, ऐसी दशा हुई है। जानकारी–धारणा रखकर बात नहीं की। आहा...हा...हा...!

जिसे, **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित...** शब्द थोड़े हैं परन्तु भाव बहुत ऊँचे हैं! आहा...हा...! समझ में आया? 'चैतन्य को' (ऐसा कहा तो) अब चैतन्य कहना किसको? (कि) यह परम आनन्द और परम ज्ञान की शक्ति का पिण्ड, अतीन्द्रिय आनन्द और सच्चिदानन्द प्रभु, द्रव्यस्वभाव जो अनादि-अनन्त (है), उस चीज़ को तो आवरण भी नहीं – ऐसी चीज़ अन्दर है। ऐसी चीज़ की दृष्टि हुई और चैतन्य को चैतन्य में से (अर्थात्) उसमें से परिणमित दशा। आहा...! अर्थात् कि सम्यग्दर्शन की पर्याय प्रगट करने की भावना। समझ में आया? बात तो यहाँ बापू! भव के अभाव की है प्रभु! बाकी तो सब बहुत देखा है यहाँ तो दुनिया को! इस चीज़ को हम 72 साल से तो देख रहे हैं।

घर की दुकान थी, वहाँ भी मैं तो शास्त्र ही पढ़ता था। घर की बड़ी दुकान चलती है, पालेज में है। पाँच साल वहाँ दुकान चलायी परन्तु तब भी मैं तो ये शास्त्र ही पढ़ता था। **पूर्व के संस्कार थे न!** तब से अन्दर से बात उठी है कि **चैतन्य को चैतन्य में से परिणमित...** आहा...हा...! राग–द्वेष नहीं, पुण्य–पाप नहीं। आहा...! जिसके नैतिक

जीवन भी ऊँचे होते हैं, उस जीवन के प्रति भी लक्ष्य नहीं। आहा...हा...! अन्तर के चैतन्य में से चैतन्य वस्तु है, वैसी दृष्टि होने पर, उसमें से निकली हुई परिणमनरूप दशा। आहा...हा...! उस चैतन्य के प्रवाह में से, परिणति में से अवस्था का प्रवाह आया। जैसे कुएँ में से बर्तन में पानी आता है, वह प्राप्त की प्राप्ति है। कुएँ में था, वह बर्तन में आया। बर्तन कहते हैं न? आहा...हा...! वैसे चैतन्य में अन्दर वस्तु से आहा...हा...हा...! उसमें से परिणमित हुई दशा वह, **भावना अर्थात् राग–द्वेष में से नहीं उदित हुई....** आहा...हा...हा...! सूक्ष्म बात तो है प्रभु! तेरी प्रभुता की बात तो, बापू! भगवान भी पूर्णरूप से नहीं कह सकें। आहा...!

जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
जो पद झलके श्री जिनवर के ज्ञान में,
कह न सके पर वह भी श्री भगवान जब।
उस स्वरूप को अन्य वचन से क्या कहूँ,
अनुभवगोचार मात्र रहा वह ज्ञान जब॥
अपूर्व.....॥

'श्रीमद् राजचन्द्र' हो गये। 33 वर्ष की उम्र में देह छूट गयी है परन्तु वे एकावतारी हो गये हैं। मुम्बई में लाखों का जवाहरात का व्यापार था। फिर भी अन्दर में भिन्न हो चुके थे। नारियल का जैसे गोला भिन्न पड़ता है; वैसे धर्मी को सम्यग्दर्शन में राग से और देह से अन्दर (चैतन्य) गोला भिन्न पड़ गया होता है। आहा...हा...!

वे 'श्रीमद्' 33 साल की उम्र में देह छूट गयी, फिर भी इस अनुभव की दृष्टि के ज़ोर से इतना अधिक आया था कि हमें अब एकाध भव करना है, बापू! हम अब हमारे स्वदेश जायेंगे। हमारा स्वदेश अन्दर चैतन्य भगवान, यह हमारा देश है। यह (बाहर का) देश नहीं। अरे...! पुण्य और पाप के परिणाम भी प्रभु! हमारा देश नहीं! यह बात अन्दर बहिन के (वचनामृत में से) चल गयी, परसों कही थी। 401 (नम्बर का) बोल है। आ...हा...हा...! यह तो संसार से पागल होनेवाले की बातें हैं।

(यहाँ) कहते हैं कि जिसकी भावना चैतन्यस्वरूप भगवान (आत्मा)! उसमें से

उदित, प्रगट अंकुर परिणमन करे, वह पर्याय–भावना कैसी होती है? कि जिसमें पुण्य और पाप, राग–द्वेष रहित भावना होती है। आहा...हा...! है (अन्दर)? अर्थात् **राग–द्वेष में से नहीं उदित हुई –ऐसी भावना।** आहा...हा...!

अरेरे...! ऐसा अवतार मिला, इसमें यदि आत्मा का (हित) कुछ नहीं किया (तो) फिर से मनुष्यपना कब मिलेगा प्रभु? चौरासी के अवतार में अनन्त काल से भटक मरा है। नरक और निगोद के दुःख...! तेरे दुःख देखकर देखनेवालों को रोना आया है बापू! ऐसे दुःख सहन किये हैं। परन्तु भूल गया! थोड़ी बाहर में अनुकूलता मिली, दो–पाँच करोड़ रुपये मिले और लड़के-लड़कियाँ आदि अनुकूल हों, शरीर थोड़ा सुन्दर मिला हो कि बस! मर गया उसमें! मेरी चीज़ अन्दर में कौन है? इसको देखने का, विचार करने का अवकाश भी नहीं लेता!!

यहाँ तो कहते हैं कि आहा...हा...! चैतन्य में से उदित भावना, राग–द्वेष रहित (होती है)! राग–द्वेष रहित...! आहा...! यहाँ तो धर्म की बात है न प्रभु! धर्म (प्राप्ति हुए) पहले नैतिकता की बात तो कही। नैतिक जीवन तो होना ही चाहिए। साधारण प्राणी–सज्जन जिसको कहे उसको भी दारू, माँस और परस्त्री तो हो ही नहीं सकते। सर्व माता (स्त्रियाँ) बेटियाँ, माता और बहिन समान उसको तो होती हैं। आहा...हा...! ऐसा तो जिसका नैतिक जीवन होता है।

ऐसे जीवन में से जब चैतन्य में से परिणमित पर्याय आती है, वह राग और द्वेष रहित दशा आती है। आहा...हा...! थोड़ा कठिन लगे परन्तु प्रभु! सुनना हों....! कठिन लगे तो भी...! दूसरी बात क्या करें? यहाँ तो 45 साल से यह बात चलती है। 45 साल हुए! 45 यहाँ हुए और 45 इसमें (अर्थात्) संसार में 45 हुए! संसार में तो 23 वर्ष गये परन्तु बाद में भी वहाँ सम्प्रदाय में इसमें (मुहपत्ती में) रह गये न! ऐसे करके 45 हुए और 45 यहाँ (सोनगढ़ में) हुए। किन्तु यह बात जो उगी...! आहा...हा...हा...!

राग और द्वेष रहित हुई भावना। है? **ऐसी यथार्थ भावना हो....** 'ऐसी' यथार्थ भावना–यथार्थ भावना क्यों कही? क्योंकि शास्त्र की जानकारी करके बात की धारणा कर रखी हो परन्तु अन्दर की भावना न हो। आहा...हा...! शास्त्रों को पढ़कर धारणा कर ली

हो परन्तु अन्दर में राग–द्वेष रहित होकर चैतन्य की भावना परिणमित न हुई हो। (यहाँ तो यथार्थ भावना हुई हो) ऐसे जीव की बात ली है।

वह जीव चैतन्य में परिणमन करता है। आहा...हा...! भगवान अन्दर चैतन्य के नूर का पूर (बाढ़) है! ध्रुव चैतन्य का प्रवाह है। जैसे पानी का प्रवाह धारावाहीरूप से यों चलता है। नदी में पानी जब बहुत ज़ोर से दोनों तट को छूता है... हमारे उमराला–जन्मधाम में बड़ी नदी है। सैलाब आता है तब 20–25 फुट पानी आता है। पूरा किनारे पर पानी छा जाता है। सामने देख न सके उतना पानी...!

यहाँ यह कहते हैं कि नदी में बाढ़ इतने जोर से ऐसे प्रवाह में चलती हो, इससे भी अनन्त गुना प्रवाह अन्दर आत्मा (का) चैतन्यप्रवाह है! आहा...! चैतन्य के तेज का–प्रकाश का नूर का पूर है! अरेरे...! उसमें से उदित हुई भावना (अर्थात्) **ऐसी यथार्थ भावना हो...** यहाँ 'यथार्थ' पर ज़ोर है। कल्पना करके (कुछ परिणमन हुआ) वह नहीं परन्तु 'यथार्थ' (भावना है)। जैसी चीज़ है, वैसी अन्दर भावना हो **तो वह भावना फलती ही है।** तो वह भावना फलती ही है! (अर्थात्) उस भावना में से केवलज्ञान आयेगा ही! दूज का उदय हुआ, अब पूर्णिमा न हो – ऐसा तीन काल में नहीं बनता। क्या कहा?

दूज उगती है न? दूज के बाद तेरहवें दिन पूर्णिमा होती ही है। वह पूर्णिमा न हो – ऐसा कभी नहीं बनता। आहा...हा...हा...! वैसे जिसको आत्मा के सम्यक्रूपी दूज का जहाँ अन्दर में उदय हुआ...! भगवान चैतन्यमूर्ति आनन्द का नाथ! अन्दर में राग और द्वेष के भाव से रहित होकर, अन्दर चैतन्य की दूज उगी...! आहा...हा...! परिणमित दशा का उदय हुआ वह दूज है। उस दूज में से जैसे पूर्णिमा होगी ही। वैसे यह सम्यग्दर्शन की परिणति हुई, उसको केवलज्ञान होगा ही। जैसे यह दूज (का चन्द्र) तेरह दिन बाद (पूर्णरूप से परिणमित) होता है, वैसे इसे एक या दो भव में केवलज्ञान आये बिना नहीं रहता। आहा...हा...हा...! ऐसी बातें हैं भाई। है (अन्दर)? (चैतन्य में से) उदित भावना ऐसी यथार्थ हो तो वह भावना फलती ही है। आ...हा...हा...!

बहिन विचारपूर्वक अनुभव में से बोलते थे कि **...यदि नहीं फले तो जगत को–चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** यह क्या कहा? आहा...हा...! चैतन्य की भावना

(अर्थात् कि) राग–द्वेष से रहित होकर अन्दर चैतन्यस्वरूप प्रभु की भावना हुई, उसका फल अवश्य आता ही है। (अर्थात्) केवलज्ञान होकर ही रहेगा। न फले तो जगत को–चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े। क्योंकि यदि इस भावना का फल न आये, तब तो जगत शून्य हो जाये। क्योंकि प्रत्येक (द्रव्य की) पर्याय का (यदि) फल न आये, तब तो जगत शून्य हो जाये। आ...हा...हा...हा...!

पाप के परिणाम का फल भी नरक–निगोद न आये; पुण्य का फल भी स्वर्ग और मनुष्यपना न आये; और चैतन्य के परिणाम का फल केवलज्ञान न आये (तो) जगत को शून्य होना पड़े!! आहा...हा...! समझ में आया? पाप के बीज बोये, उसको नरक और निगोद न मिले; पुण्य का भाव हुआ, उसे स्वर्ग या मनुष्यत्व न मिले; और चैतन्य की भावना हुई, उसे केवलज्ञान न मिले, (तो) जगत को शून्य होना पड़े!! (परन्तु) ऐसा तीन काल में होता नहीं! आहा...हा...हा...! सूक्ष्म बात है भगवान! दुनिया से अलग प्रकार की लगे परन्तु बात तो यह है प्रभु! आ...हा...हा...!

उसको मनुष्यपना मिला तो मनुष्य कहना किसको? 'गोम्मटसार' में एक पाठ है। मनुष्य किसको कहें? आहा...हा...! **ज्ञायक ते इति मनुष्यः** (अर्थात्) आत्मा का चैतन्य स्वरूप जाने, उसे मनुष्य कहते हैं, बाकी सबको पशु कहते हैं। आहा...हा...! 'गोम्मटसार' में (आता) है। **ज्ञायक ते इति मनुष्यः** आत्मा चैतन्यस्वरूप है, उसे जो जाने, वह मनुष्य कहलाये। **मनन कर्ते इति मनुष्यः** चैतन्य का मनन करे, ध्यान करे, वह मनुष्य (है)। बाकी इसके बिना (सबको) पशु कहा जाता है। आहा...हा...!

शास्त्र में तो यहाँ तक पाठ है कि जिसको चैतन्य की भावना-सम्यग्दर्शन नहीं है, –वे सब चलते हुए मुर्दे हैं!! पाहुड़ में है। 'मोक्षपाहुड़' में है। 'अष्टपाहुड़' है न? इसमें यह है–चलते हुए मुर्दे हैं। जैसे मरे हुए को उठाकर श्मशान में ले जाते हैं, वैसे ये भी चलते हुए मुर्दे हैं!! चैतन्यस्वरूप अन्दर भगवान पूर्ण वीतरागमूर्ति! इसकी जिसको रुचि नहीं, इसके प्रति सन्मुखता नहीं, इसकी ओर का झुकाव नहीं, इसकी ओर का प्रेम नहीं, वे सब चलते हुए मुर्दे हैं। ऐसा है, बापू! आहा...हा...!

यहाँ वही कहते हैं कि **चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े...** अर्थात्? जैसी–जैसी भावना (हो), उसका फल न आये तो जगत रहे नहीं। पाप करे (उसे) नरक, निगोद

न मिले तो जगत रहे नहीं। पुण्य करे और मनुष्यपना–स्वर्ग न मिले तो जगत रहे नहीं। वैसे आत्मा की भावना करे, उसे केवलज्ञान न हो तो तत्त्व रहे नहीं और जगत रहे नहीं! आहा...हा...! बापू! मार्ग तो कोई अलग है प्रभु! आहा...हा...!

ये तो आमन्त्रण था और आ गये! वरना हम तो सोनगढ़ से बाहर...!

मुमुक्षु–हमारे अहोभाग्य कि हमें समझने मिला!!

पूज्य गुरुदेवश्री–बापू! यह तो 'वननी महि कोयल' बिछड़ जाती है, वैसे कोयल आ गयी है। आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं प्रभु! एक बार सुन तो सही! जिसको आत्मा की भावना हो, उसका फल सर्वज्ञपना न आये तो जगत में पाप का फल नरक–निगोद और पुण्य का फल (मनुष्य)–स्वर्ग, वह सब नष्ट हो जाये। समझ में आया? इन शब्दों में ऐसी भावना भरी है!! चन्दुभाई! आहा...हा...!

मुमुक्षु–बहुत अच्छा अर्थ आया।

पूज्य गुरुदेवश्री–क्या कहा?

मुमुक्षु–बहुत अच्छा अर्थ आया आज!

पूज्य गुरुदेवश्री–वस्तु ऐसी है, प्रभु! आहा...हा...!

पाप के परिणाम करे और उसे नरक–निगोद न मिले, तब तो वह वस्तु–नरक और निगोद रहेंगे ही नहीं। पुण्य के परिणाम करे और स्वर्ग, मनुष्यत्व न मिले तो वह वस्तु ही नहीं रहती। इसी तरह चैतन्य के परिणाम करे और केवलज्ञान न हो तो वह वस्तु ही नहीं रहती। आहा...हा...! बोल आया है ऊँचा!! चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े, इसका यह अर्थ (है) हों! क्या कहा इसमें, समझ में आया?

जगत है, पुण्य और पाप के फलस्वरूप स्वर्ग–नरक है और आत्मा की भावना के फलस्वरूप सिद्धपद है। तो यह (ऐसी) जो वस्तु हैं (अर्थात्) सिद्धपद है, नरक–निगोद है, स्वर्ग–मनुष्य है–यह सब भाव अनुसार न मिलते हो, तब तो ये वस्तुएँ रहती नहीं। इसी तरह चैतन्य की भावना हुई और केवलज्ञान न हो, तब तो सिद्धपद नहीं रहता। आहा...हा...! दूज उगे और पूर्णिमा न हो तो वह दूज उगी ही नहीं। आहा...हा...! वैसे भगवान आत्मा!

(जिसने) चैतन्य के बीज अन्दर बोये, वह यदि उगे नहीं और केवलज्ञान न हो, तब तो यह आत्मा ही नहीं रह सकता। आ...हा...हा...! ऐसी बातें हैं, प्रभु!

चौदह ब्रह्माण्ड को शून्य होना पड़े अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाय। देखा? क्योंकि उसकी पर्याय है और (उसका) फल यदि न आये तो द्रव्य ही न रहे। जिस आत्मा ने नरक–निगोद के भाव किये, उस भाव अनुसार नरक में (न जाये तो वह द्रव्य ही नहीं रहता)। ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती! छः खण्ड का धनी! 96 हज़ार स्त्रियाँ और 96 करोड़ सैनिक...! उसका नायक मरकर सातवीं नरक में गया। (यहाँ) कहते हैं कि उस पाप का फल यदि न आये तो जगत ही नहीं रहता, ऐसा कहते हैं। बात समझ में आती है न? वैसे पुण्य के फलस्वरूप स्वर्गादि, मनुष्यादि न मिले तो वस्तु ही नहीं रहती; इसी प्रकार चैतन्य के परिणाम हुए, और केवलज्ञान न होवे तो यह वस्तु ही नहीं रहे; जगत शून्य हो जाये। आहा...हा...! बहुत गहरी (और) सूक्ष्म बात है। **परन्तु ऐसा होता ही नहीं।** आ...हा...हा...! **अथवा तो इस द्रव्य का नाश हो जाय।** अर्थात्? परिणाम है, उसका फल यदि न आये तो द्रव्य रह ही नहीं सकता। जैसी पर्याय की, उसका फल यदि न आये तो पर्याय के बिना द्रव्य रह ही नहीं सकता। द्रव्य का नाश हो जाय। थोड़ी सूक्ष्म बात है परन्तु ऊँची बात है। आ...हा...हा...! **परन्तु ऐसा होता ही नहीं।** आहा...हा...हा...! जैसे परिणाम किये, वैसा फल आये बिना रहता ही नहीं। आहा...! चार गति और सिद्धगति–यह परिणाम का फल है। तो उन परिणामों का फल यदि न आये तो चार गति और सिद्धगति ही नहीं रह सकती। आहा...हा...! समझ में आया? वैसे आत्मा में राग और द्वेषरहित चैतन्यस्वरूप की श्रद्धा और ज्ञान की भावना (जिसको हुई), उसको केवलज्ञान और परमात्मपद न हो, तब तो उस पर्याय रहित द्रव्य का नाश हो जाये, तो उसका नाश होने पर जगत का भी नाश हो जाये। ऐसा अन्दर कहते हैं, देखो! है?

चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है। पाप किये हों तो नरक–निगोद, पुण्य किये हों तो स्वर्गादि और चैतन्य के परिणाम किये हों तो मुक्ति (मिले बिना रहती नहीं)। ऐसा... है? **चैतन्य के परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है।**–कुदरत में इसका फल आये बिना रहता ही नहीं। आहा...हा...! जिसको चैतन्य की भावना प्रगट हुई, उसका मोक्ष हुए बिना रहता ही नहीं। दूज उगी उसकी पूर्णिमा हुए बिना रहती ही नहीं। आहा...हा...!

बात तो थोड़ी सूक्ष्म (है) परन्तु...! बहिन के शब्द हैं। आप सब ने लिखाया है न! झवेरचन्दभाई ने और सबने इकट्ठे होकर। लक्ष्मीचन्दभाई ने, कि दोपहर में यह पढ़ना। वहाँ पत्र आया था। सुबह 'समयसार' और दोपहर में यह ('वचनामृत' पढ़ना)। आहा...हा...!

परिणाम के साथ कुदरत बँधी हुई है अर्थात् क्या कहा? जैसे पुण्य, पाप और धर्म के परिणाम करेगा, इसके अनुसार में इसका फल जगत में आये–ऐसे कुदरत बँधी हुई है।

मुमुक्षु–महा सिद्धान्त है!

पूज्य गुरुदेवश्री–इसका फल आये बिना रहे ही नहीं। आहा...हा...हा...! माँस, दारू, और मछली खाये, परस्त्री का सेवन करे और वह नरक में न जाये (तो) जगत को शून्य होना पड़े। इस परिणाम के फलस्वरूप (जो) गति है, वह गति ही नहीं रहेगी। वैसे जिसने पुण्य के परिणाम किये और उसे स्वर्ग न मिले तो वह स्वर्ग ही नहीं रह सकेगा। वैसे जिसने चैतन्य के परिणाम किये, (उसको) मुक्ति न मिले तो वह सिद्ध (गति) नहीं रह सकती। आहा...हा...! सूक्ष्म है परन्तु प्रभु! तेरे घर का है! तेरे घर की बात है, प्रभु! आहा...हा...! **ऐसा (ही) वस्तु का स्वभाव है।** कहा न? शुभ, अशुभ और शुद्ध–इन परिणामों का फल यह जगत है। ऐसा ही वस्तु का स्वभाव है। आहा...हा...! **यह अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात है।** है उसमें? आहा...हा...!

बहिन तो तीर्थंकर के पास थे। महाविदेह में (सीमन्धर) भगवान विराजते हैं, उनके पास थे। वहाँ हमारे साथ थे।

(बहिन) ऐसा कहते हैं कि यदि इन परिणामों का फल ऐसा नहीं आये, आहा...हा...! तो अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात मिथ्या सिद्ध होगी! यह बात अनन्त तीर्थंकरों ने कही है कि, जो पाप के परिणाम करे, उसे नरक–निगोद मिलता है; पुण्य के परिणाम करे, उसे स्वर्गादि मिलता है, फिर भले ही चार गति में भटके! और चैतन्य के परिणाम करे तो उसे मुक्ति मिले–वह अनन्त तीर्थंकरों ने यह बात कही है। है न उसमें प्रभु? आ...हा...हा...! अरेरे...! दरकार कहाँ है? इसमें फिर पैसे जरा 5-50 लाख, करोड़-दो करोड़ मिल गये, तब तो हो गया...! 'मैं चौड़ा और गली सकड़ी'। ऐसा हो जाय! उलझ जाय... इसी में उलझ जाय!

एक बार दृष्टान्त नहीं दिया? गोवा में–एक शान्तिलाल था... खुशाल शान्तिलाल।

240 करोड़ रुपये, उसके पास 240 करोड़ ! ढाई अरब ! दो अरब चालीस करोड़ !.. फिर बढ़ गये थे। लड़का आया था, हमारे पास आया था। आता है। परन्तु वह अन्त में अन्दर दुःख ऐसा आया, अरे... ! मुझे दर्द होता है, डॉक्टर को बुलाओ। इकसठ वर्ष की उम्र। यह दो अरब चालीस करोड़ और साठ लाख के तीन मकान हैं, गोवा में है। वह मर गया। लड़के हैं। यह मुझे दर्द होता है, डॉक्टर को बुलाओ। डॉक्टर जहाँ आता है, वहाँ तो भाईसाहब की देह छूटकर चौरासी के अवतार में जाए भटकने। आहा... ! तेरे पैसे और तेरे स्त्री-पुत्र कोई साथ नहीं आये।

यहाँ कहते हैं कि इसके परिणाम का फल जगत में न आये तो जगत को शून्य होना पड़े। जगत, जगतरूप रह सके नहीं। पुण्य–पाप का फल और धर्म का फल न मिले तो यह दुनिया–जगत रह सके नहीं। चारगति और सिद्धपद नहीं रह सकता। झवेरचन्दभाई ! आहा...हा... ! जिसने जो बोया, उसका बीज उगे बिना रहता नहीं और यदि उगे नहीं तो उसने बीज बोया ही नहीं, और उगा तो बीज बोया है और उसका फल आया तो उसका फल आकर यह जगत टिका रहा। इस तरह जगत में जैसे परिणाम किये, वैसा उसका फल आया तो जगत यों का यों टिक रहा है। आहा...हा... ! **यह अनन्त तीर्थंकरों की कही हुई बात है।** इस एक बोल में इतना समय गया ! ऐसी बात है।

प्रभु ! तू है न ! वह तो त्रिकाली द्रव्य है परन्तु अब तेरे वर्तमान परिणाम होते हैं इन परिणामों का फल नहीं आवे तो इस जगत में स्वर्ग–नरक ही नहीं रहते। और मोक्ष के परिणाम करे और मोक्ष न आये तो सिद्धपद (–सिद्ध) गति ही नहीं रहती। ये चारगति और सिद्धगति–सबका नाश हो जाता। आहा...हा... ! ऐसी बात है प्रभु !

मुमुक्षु–तीर्थंकर के पास थे, यह अनुभव की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री–यह अनुभव की बात है। जेठालालभाई ! यह ज्येष्ठ की बात है श्रेष्ठ, यह 21 वाँ बोल हुआ।

22 वाँ बोल पढ़ने जैसा है। 23 वाँ बोल।

मुमुक्षु–22 वाँ भी भले ही वाँचें !

पूज्य गुरुदेवश्री–22वें में मेरा नाम आता (है इसलिए) इसमें हमारा काम

नहीं! बहिन स्वयं तो कहें परन्तु मेरे मुँह से यह बात कहना शोभा नहीं देता। बहिन को तो स्वयं के भाव में जो आया, सो कहा। वह बात अपने स्थान में रही। मुझसे मेरी बात नहीं कही जा सकती। समुच्चय बात हो। समुच्चय समझें? वरना तो कहाँ से आयें और यहाँ से कहाँ जानेवाले हैं, ये सब अन्दर से निश्चित हो गया है! अन्दर से निश्चित हो गया है!! ऐसा है, बापू! (सब) निश्चित हो गया है।

मुमुक्षु—अब हमको कहिये!

पूज्य गुरुदेवश्री—महाविदेह से आये हैं! प्रभु विराजते हैं, सर्वज्ञदेव सीमन्धर प्रभु समवसरण में महाविदेह में विराजते हैं। वहाँ मैं राजकुमार रूप से था। पिताजी को हाथी, घोड़े (और) अरबों की आमदनी थी। महीने की अरबों की आमदनी और घर में हाथी, घोड़े थे। उसका मैं राजकुमार था।

'कुन्दकुन्दाचार्य' संवत 49 में यहाँ से भगवान के पास गये थे। उस समय मैं भी हाथी के ओहदे भगवान के दर्शन करने, 'कुन्दकुन्दाचार्य' के दर्शन करने समवसरण में गया था। आ...हा...हा...! ऐसी बात है, बापू! बहुत सूक्ष्म बातें हैं! और भगवान के श्रीमुख से निकली हुई बातें हैं। ऐसी बातें हैं कि यह जीव...!

मुमुक्षु—बहिन कौन थे?

पूज्य गुरुदेवश्री—बहिन वहाँ नगरसेठ के पुत्र थे। हम चार लोग वहाँ थे। एक वे थे, एक शान्ताबहिन हैं, वे भी सेठ के लड़के थे। एक नारणभाई थे जिन्होंने (यहाँ) हमारे पास दीक्षा ली थी, गुज़र गये। वे वहाँ वेश्या के लड़के थे। मैं राजकुमार था, वहाँ हम चार लोग थे। वहाँ से यहाँ भरत में आये हैं। अब यहाँ की बात एक ओर रखो... हमारी बातें बहुत सूक्ष्म हैं, ऐसी बातें बहुत मुँह से कहना शोभा नहीं देता। बाकी यहाँ से मरकर हम स्वर्ग में जानेवाले हैं। वहाँ देव होनेवाले हैं। दूसरे भव में तीर्थंकर के पुत्र के रूप में अवतार है। तीसरे भव में स्वर्ग है। चौथे भव में तीर्थंकर होकर केवल(ज्ञान)पाकर मोक्ष जानेवाला हूँ। यह भाई ने पूछा, यह सेठ ने पूछा, इसलिए उत्तर देते हैं।

मुमुक्षु—हम तो आपके पुत्र समान हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री—हमारे लिये तो सब बड़े सेठ ही कहलाये न!

मुमुक्षु—गुरुदेव! सभा में प्रथम बार आपने प्रसिद्ध किया है!

पूज्य गुरुदेवश्री—ऐसी बातें नहीं कही जाती। ये तो बहिन ने इसमें लिखा है, इसलिए थोड़ा कहा, बापू! इससे भी सूक्ष्म बातें तो बहुत दूर हैं। हमें तो भीतर में प्रत्यक्ष हो चुकी हैं!! परन्तु अभी थोड़ा जीवन है, तब तक ये बातें आये। फिर तो स्वर्ग में जाना है, देवलोक में... वैमानिक में...! वैमानिक...! वैमानिक देव है! देव चार हैं। भवनपति, व्यन्तर, ज्योतिष और वैमानिक (ऐसे) चार प्रकार के देव हैं। उसमें मेरा वैमानिक में अवतार है। (अब) इस बात को रखो एक तरफ....!

ऊपर—ऊपर के वांचन—विस्तार आदि से कुछ नहीं होता, अंदर अंतडियों से भावना उठे तो मार्ग सरल होता है। अन्तःस्तल में से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिए॥23॥

अब यहाँ 23 वाँ बोल (लेते हैं)। 23 वाँ बोल। **ऊपर—ऊपर के वांचन—विस्तार आदि से कुछ नहीं होता,....** आहा...हा...! ऊपर—ऊपर से (कुछ) पढ़ लिया और थोड़ा विचार कर लिया, इससे कुछ मिले, ऐसा नहीं, बापू! अन्दर गहराई में जाना पड़ेगा। आहा...हा...! समझ में आया? आहा...हा...! ऊपर—ऊपर का वांचन, सुनना, विचार आदि! 'आदि' शब्द है न? ऊपर—ऊपर से सुना हो, इसमें कुछ मिले, ऐसा नहीं। आहा...हा...! उसे आत्मा में उतारना होगा, प्रभु! अन्दर में उतारने के लिये पहले श्रद्धा व भावना तो इसे करनी पड़ेगी। श्रद्धा और ज्ञान में तो लेना पड़ेगा कि इस आत्मा में उतरूँगा, तब मेरा कल्याण होगा। ऐसा पहले इसे ज्ञान में निर्णय करना होगा। भले ही कर सके नहीं परन्तु इसके ज्ञान में वैसा निर्णय तो पहले होना चाहिए कि मुझे इस द्रव्य / आत्मा जो है, उसमें जाना ही होगा। इसके बिना मेरा कल्याण है नहीं। आ...हा...हा...हा...! सूक्ष्म बातें हैं, बापू!

(अब कहते हैं) **अंदर अंतडियों से भावना उठे...** आहा...हा...! अंदर से भावना

उठे (ऐसा) कहते हैं। ऊपर–ऊपर से वांचन, श्रवण और मनन (करे), वह नहीं। आहा...हा...! अन्दर में से भावना उठे, आत्मा में से जागृतदशा हो **तो मार्ग सरल होता है।** तो मार्ग सरल होता है। **अन्तःस्तल में से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिए।** आहा...हा...! प्रभु! जो ज्ञायक है, जो जाननेवाली चैतन्य ज्योति है, अन्दर में झिलमिलाती ज्योति प्रज्वलित है, प्रभु! चेतन का पूर (बाढ़)–ज्ञान का पूर भरा है। जैसे पानी का प्रवाह ऐसे बहता है, वैसे यह चैतन्य का नूर ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ध्रुव... ऐसे जाता है। ऐसा जो पानी के चैतन्य के पूर का ध्रुवपना आहा...! इसकी अन्तर में से भावना उठे तो मार्ग सरल हो। आहा...हा...! पहले जीव को सुनना तो चाहिए न प्रभु! सुनने को मिले नहीं, वह जाये कहाँ? आ...हा...हा...!

अन्तःस्तल में से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिए। आहा...हा...! शास्त्र की धारणा भी की हो, पढ़ा हो परन्तु वह तो ऊपर–ऊपर की बात है। आहा...हा...! अन्तर में ज्ञायकभाव...! अन्तःस्तल में। ज्ञानज्योति चैतन्य ध्रुव विराजमान है, प्रभु! इसकी अन्तःस्तल में से खूब महिमा आनी चाहिए। तब उसे अन्तर में प्रवेश होकर सम्यग्दर्शन होता है, तभी उसकी धर्म की प्रथम दशा होती है। प्रथम दशा...! आहा...हा...! थोड़े शब्द में बहुत गहरा भर दिया है!

क्या कहा यह? (कि) **अन्तःस्तल में से खूब महिमा आये,** बाहर से नहीं। पुण्य–पाप के भाव के फल की महिमा, वह तो धूल की (महिमा है)। (यहाँ तो) अन्तःस्तल–जो क्षेत्र है आत्मा (का), जिस क्षेत्र में आनन्द की फसल है। (इसके महिमा की बात है)। जगत में भी... क्या कहते हैं उसे? चावल के अलावा वह क्या...? तुम्हारे नाम भी भूल जाते हैं! कुलथी...! कुलथी के खेत–जमीन साधारण होती हैं, और चावल के खेत ऊँचे होते हैं। अच्छे खेत में चावल पकता है। कुलथी अच्छे खेत में नहीं पकती। वह साधारण पत्थर की जमीन में कुलथी पकती है। हमारे वहाँ साथ (साथ में–बगल में) गाँव है, वहाँ कुलथी पकती है, चावल पकते हैं सब बगल–बगल में हैं। वैसे यह आत्मा–जमीन (अर्थात्) अन्तःस्तल, (वह) अतीन्द्रिय आनन्द की फसल हो, ऐसा यह खेत है। आहा...हा...! और पुण्य–पाप के खेत में से संसार की गति फले, ऐसा यह खेत है। आहा...हा...!

पुण्य और पाप के भाव, वह खेत है, वह चार गति में भटकने का (खेत) है, और यह अन्तर खेत जो है, आहा...! उसमें आनन्द की फसल हो, ऐसा यह खेत है। इसमें से अतीन्द्रिय आनन्द का अंकुर फूटता है! आहा...हा...! ऐसा आत्म–तल अन्दर तल है!! वर्तमान पर्याय से अन्दर देखने से, उसका तल–तल अर्थात् ध्रुव (स्वरूप को) देखने से उसकी पर्याय में आनन्द के अंकुर फूटे, ऐसा वह क्षेत्र है, ऐसा वह आत्मा तल है। अरे... अरे...! ऐसी बातें...!

यहाँ तो बाहर में कुछ पैसा हो जाये वहाँ हो गया... खान–पीन का ठिकाना नहीं, अभक्ष्य खा रहे हैं या नहीं... (इसकी भी खबर नहीं रहे)। यह आता है न, वह (क्या कहते हैं?) अण्डा और आहा...! मछली का तेल और कॉडलीवर आता है न? काफ़ी कुछ पता है न! ऐसा आये और दुनिया प्रयोग करे...! अरेरर...! इसका फल तो, बापू! नरक है! उस नरक के दुःख का वर्णन प्रभु करते हैं। प्रभु! तेरे क्षण के दुःख...! प्रभु कहते हैं कि नरक के दुःख का वर्णन मैं क्या करूँ? करोड़ो भव व करोड़ों वर्ष से, करोड़ जीभों से कहे तो भी पूरा न हो, इतना वहाँ दुःख का वेदन है!! नरक में...!

एक आदमी का खून करे (और) यदि उस खून की साक्षी मिले तो राजा उसे कदाचित् एक बार फाँसी दे, परन्तु उसने 25-50-100 (आदमी) के खून किये हों तो राजा उसे (100 बार) फाँसी किस प्रकार दे? क्या कर सकेगा? 100 बार फाँसी देगा? एक बार खून किया हो, उसे एक बार फाँसी और 25-50 खून किये हो, उसके लिये क्या? उसके लिये कुदरत में नरक है। यहाँ राजा उसका फल नहीं दे सकता। उसको 25 बार फाँसी पर नहीं लटका सकता। आहा...हा...हा...! उसका फल अन्दर (नरक में) है। आहा...हा...!

वह यहाँ कहते हैं कि अन्दर में से भावना उठनी चाहिए। ऊपर–ऊपर से विचार (चलते) हो, उसका फल कुछ नहीं आता। **(हृदय से भावना उठे तो) मार्ग सरल होता है। अन्तःस्तल में से ज्ञायक की खूब महिमा आनी चाहिए।** आहा...हा...! (23 पूरा हुआ)।

आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिए, विचार–मनन करना चाहिए; यही आत्मार्थी की खुराक है॥24॥

(अब) 24, **आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिए,...** बहिन की भाषा है, (कि) स्वाध्याय करना चाहिए। दो–चार घण्टे शास्त्र स्वाध्याय के लिये समय निकालना। एक घण्टा, आधा घण्टा पढ़ जाए, उसमें कुछ पार नहीं आता। संसार हेतु–पाप हेतु कैसे चौबीस घण्टे निकालते हैं? तो उसमें से दो–चार घण्टे आत्मा के शास्त्रवांचन के (लिये) समय निकालना चाहिए। भगवान के कहे हुए आगम, तीन लोक के नाथ जिनेश्वरदेव की दिव्यध्वनि–वाणी–आगम का वाँचन करना चाहिए, उसका विचार करना चाहिए, उसका मनन करना चाहिए। **यही आत्मार्थी की खुराक है।** आहा...हा...! इसके बिना उसे रुचे नहीं, सुहाता नहीं। समझ में आया? दो लाईन में इतनी बात भर दी है!!

आत्मार्थी को स्वाध्याय करना चाहिए,... स्वाध्याय अर्थात् ये शास्त्र (स्वाध्याय)। स्वाध्याय के दो प्रकार हैं–एक वाँचन, श्रवण, मनन, वह स्वाध्याय और एक स्वाध्याय अर्थात् आत्मा–स्व का अन्दर मनन (और) आनन्द का अनुभव, वह स्वाध्याय है–वह निश्चय स्वाध्याय (है)। आहा...हा...! और शास्त्र वांचन आदि करना, वह व्यवहार स्वाध्याय (है)। परन्तु पहले व्यवहार स्वाध्याय आना चाहिए। वांचन चाहिए, विचार चाहिए, मनन चाहिए, चिन्तवन चाहिए। (इसलिए कहते हैं कि) स्वाध्याय करना चाहिए। आहा...हा...! वांचन करना, पूछना, प्रश्नोत्तर करना, इसका विचार करना, ऐसा पहले इसे होना चाहिए। बापू! भगवान द्वारा कथित आगम–शास्त्र के विचार करना चाहिए। आहा...हा...!

यहाँ तो 64 की साल से शास्त्र वांचन है। 64 की साल से! पिताजी की–घर की दुकान है न! वहाँ पालेज में दुकान है। अभी भी दुकान चल रही है। बड़ी दुकान है। 40 लाख रुपये हैं। चार लाख की आमदनी है। चार लाख! अभी लड़के हैं परन्तु मैं तो (वहाँ भी) स्वाध्याय करता था। 19 साल की उम्र से इन शास्त्रों का स्वाध्याय कर रहा हूँ। दसवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचारांग, सूयगडांग, आहा...हा...! (ये सब पढ़ा है)। उसमें जब 78 में 'समयसार' हाथ आया वहाँ तो पुकार उठा और कहा कि, **'बापू! इस शरीर**

रहित होना हो तो यह पुस्तक है!!' दामनगर के एक सेठ थे। 'दामोदर सेठ!' तब दस लाख रुपये (उनके पास) थे। 60 वर्ष पहले। घर का खेत था। एक गाँव भी था, कैसा नाम? 'मूलियापाटण' नाम का गाँव था... उसको वांचन बहुत था, परन्तु दृष्टि में अन्तर था; इसलिए वांचन-बांचन व्यर्थ गया और अन्त में मरते हुए, कोई मुझे खींचता है, मुझे कोई खींचता है, कोई मुझे खींचता है—ऐसा हो गया, (क्योंकि) ज्ञान की अवस्था न्यून होने लगी, घटने लगी। पाप किये थे तो घटने लगी। मुझे कोई खींचता है। मैं कहाँ जाता हूँ, इसका पता पड़ता नहीं—ऐसा अन्दर से हो गया था। उसको मैंने कहा था, **'सेठ! यह समयसार शरीररहित होने की चीज़ है!'** 78 की (साल की) बात है। कितने वर्ष हुए? 55 हुए न? 57-57 (हुए न)! उन दिनों की बात है। कहा कि.... यह पुस्तक.... पण्डितजी! तुम्हारे जीवन (जन्म) के पहले की बात है यह तो। उस समय तो उसमें थे, इसलिए मानते। शेठ ने कहा, यह पुस्तक शरीररहित होना हो तो यह 'समयसार' है। इसमें आत्मा की बात है। और आत्मा का मोक्ष कैसे हो? (और) सम्यग्दर्शन (कैसे हो)? यह चीज़ इसमें है। ऐसी चीज़ और जगह है नहीं। उसने उस समय स्वीकार किया था, परन्तु फिर मैंने परिवर्तन किया, तब फिर फेरफार हो गया था। फिर तो गलती निकालने लगे इस समयसार में भी।

यहाँ कहते हैं **आत्मार्थी को स्वाध्याय करना... चाहिए,** आहा...हा...! वांचन करना, विचार करना, पूछना, पर्यटन करना। आहा...हा...! दूसरों के समक्ष इस बात को रखना कि यह कैसे है? **विचार—मनन करना चाहिए; यह आत्मार्थी की खुराक है।** आत्मार्थी की खुराक यह है। श्रीखंड, पुड़ी और पत्तरवेलीयां...! पत्तरवेलीयां समझते हैं? अरवी के भुजिये! अरवी के पत्ते की पकौड़ी को पत्तरवेलीयां कहते हैं न! श्रीखंड, पुड़ी और अरवी के पत्ते की पकौड़ी!! अरवी के पत्ते होते हैं न? फिर उसमें चने का आटा डालकर गोल बीड़ा बनाते हैं न! बीड़ा बनाकर इसके टुकड़े करते हैं! सब देखा तो है न! किया नहीं है कुछ! (परन्तु) देखा है सब! उस पत्ते के बीड़े के टुकड़े करके उसे घी में तलते हैं और यहाँ साथ श्रीखण्ड (हो)...! (तो मानो ऐसा हो जाता है कि) आहा...हा...हा...!

मुमुक्षु—सब बातों में आप निष्णात लगते हो!

पूज्य गुरुदेवश्री—सब बातें देखी हैं। बापू! एक—एक! एक स्त्री के साथ शादी नहीं की, इतना फ़र्क है। इसके अलावा बाकी सब देखा है।

यहाँ यह कहते हैं कि आत्मार्थी की तो यह खुराक है। 24 घण्टे में से स्वाध्याय, मनन का समय निकाल लेना चाहिए। चाहे कैसे भी दो–चार घण्टे निकालने चाहिए। देखो! 'चन्दुभाई' चार घण्टे पढ़ते हैं। 'चन्दुभाई डॉक्टर'! बड़े डॉक्टर हैं। राजकोट के बड़े डॉक्टर हैं। हमेशा चार घण्टे पढ़ते हैं।

मुमुक्षु–.....बड़े डॉक्टर नहीं, किन्तु बड़े के डॉक्टर है।

पूज्य गुरुदेवश्री–क्या कहा यह?

मुमुक्षु–बड़े के डॉक्टर। बड़े के डॉक्टर यह। बड़े के डॉक्टर हुए। बड़े यह हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री–यह 24 वाँ बोल हुआ।

प्रथम भूमिका में शास्त्रपठन–श्रवण–मनन आदि सब होता है, परन्तु अन्तर में उस शुभभाव से सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिए कि यह सब है किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है। शुभाशुभभाव से रहित मार्ग भीतर है–ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिए॥25॥

(अब) 25 (वाँ बोल)। **प्रथम भूमिका में शास्त्रपठन–श्रवण–मनन आदि सब होता है,...** पहले (ये सब) होता है। एकदम अनुभव हो सके, ऐसे नहीं। प्रथम भूमिका में शास्त्रपठन (अर्थात् कि) भगवान द्वारा कथित शास्त्र का पठन, उसका श्रवण–सुनना, उसका मनन आदि सब होता है। **परन्तु अन्दर में उस शुभभाव से सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए।** आहा...हा...! ऐसा जो शुभभाव, वह सब शुभभाव है, पुण्य है। इससे सन्तुष्ट नहीं हो जाए। आहा...हा...! यह होता है जरूर...।

प्रथम भूमिका में शास्त्रपठन–श्रवण–मनन आदि सब होता है, परन्तु अन्दर में उस शुभभाव से सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए। कि हमने तो काफ़ी पठन कर लिया, बहुत श्रवण किया, अब बहुत स्मरण में है–(ऐसे) सन्तोष नहीं करना। **इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रहना चाहिए...** कौन–सा कार्य? पठन, श्रवण और मनन। शास्त्र का मनन।

इस कार्य के साथ ही ऐसा खटका रखना चाहिए कि यह सब है, किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है। शास्त्रवांचन करे, सुने, विचार करे परन्तु अन्दर में से देखे है कि भाई ! मार्ग तो अन्दर कोई अलग ही है। इन शुभ के विकल्पों से भी कोई (मोक्ष)मार्ग नहीं। शुभभाव (हो) किन्तु वह कोई मार्ग नहीं–ऐसा खटका तो अन्दर रहना चाहिए। आ...हा...हा... ! ये यहाँ (बहुतों को) तो शास्त्रवांचन का भी ठिकाना नहीं होता !

(आत्मार्थी को) प्रथम भूमिका में शास्त्रवांचन (के भाव) आते हैं परन्तु अन्दर शुभभाव में सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए। (उन सब) कार्यों के साथ खटका रहना चाहिए कि **यह सब है, किन्तु मार्ग तो कोई अलग ही है।** आहा...हा... ! शास्त्र पढ़े, सुने परन्तु जानता है कि यह तो शुभ विकल्प हैं। अन्दर में मार्ग कोई अलग है। शुभराग से हटकर अन्दर चैतन्यस्वरूप में जाना, वह मार्ग कोई अलग प्रकार का है। शास्त्रवांचन किया, इसलिए मार्ग मिल गया–ऐसा इसे सन्तोष नहीं लेना है। आहा...हा... ! इसका भी (अभी तो) कईयों को ठिकाना नहीं ! ये तो (इतना सब होता है) उसको (कहते हैं कि) परन्तु अन्दर का खटका तो रहना ही चाहिए। आहा...हा... ! (कि) **मार्ग तो कोई अलग ही है। शुभाशुभभाव से रहित मार्ग भीतर है...** शुभ और अशुभ, पुण्य और पाप के विकल्प–भाव हैं, (उन) दोनों भाव से रहित, आहा...हा... ! अन्दर मार्ग है। उन शुभाशुभभावों में मार्ग नहीं। पुण्य–पाप के भाव में मार्ग नहीं। (कोई) पहले ऐसा कहे कि हम पापी हैं, इसलिए हम पुण्य में तो आये, परन्तु पुण्य में आये तो भी वैसा पुण्य तो अनन्त बार किया है। वह कोई मार्ग नहीं। जिसको जन्म-मरण रहित होना हो, उसके लिए वह मार्ग नहीं है। आ...हा...हा... !

ऐसा खटका तो साथ ही लगा रहना चाहिए। उन सब में यह खटका तो लगा ही रहना चाहिए। शास्त्रवांचन करे, विचार करे, कहे, बोले, कथा करे परन्तु खटका तो रहना ही चाहिए कि इन विकल्पों से मार्ग भीतर में कोई अलग है। ऐसा खटका लगे बिना यदि विचार में अटक जाये तो आगे नहीं बढ़ सकता। अतः इस वांचन में भी अन्दर में खटका तो (रहना चाहिए)। शुभाशुभभाव से भिन्न मार्ग है–ऐसा रहना चाहिए।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)